P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-5* ISSUE-2* October- 2017
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

"स्य–सिँच्–सीयुँट्–तासिँषु भावकर्मणोरुपदेशेऽज्झन–ग्रह–दृशां वा चिण्वदिट् च" सूत्रार्थ–विचार

विनोद कुमार झा
अध्यक्ष,
व्याकरण विभाग,
श्री सोमनाथ संस्कृत युनिवर्सिटी,
वेरावल, गुजरात

सारांश

भाव अथवा कर्म अर्थ गम्यमान हो, तो उपदेश अवस्था में जो अच् तदन्त धातुओं को तथा हन्, ग्रह् एवं दृश् धातुओं को विकल्प से चिण्वत् अङ्ग कार्य होते हैं, स्य, सिँच्, सीयुँट् अथवा तासिँ पर रहते, साथ ही चिण्वत् पक्ष में 'स्य' आदि को 'इट्' आगम भी होता है। 'सन्नियोगशिष्टानां सह वा प्रवृत्तिः सह वा निवृत्तिः' इस परिभाषा के बल से "स्य–सिँच्–सीयुँट्–तासिँषु भावकर्मणोरुपदेशेऽज्झन–ग्रह–दृशां वा चिण्वदिट् च" सूत्र से जिस पक्ष में 'चिण्वद्भाव' होता है, उसी पक्ष में 'इट्' आगम भी होता है। 'चिण्वद्भाव' से तात्पर्य है कि 'चिण्' परे रहते, जो–जो अङ्ग सम्बन्धी कार्य किये जाते हैं, वे सभी अङ्ग कार्य 'स्य' आदि प्रत्ययों के परे रहते भी हों। कारण कि चिणि इव चिण्वत् अर्थ में **"तत्र तस्येव"**[1] सूत्र से सप्तम्यन्त प्रातिपदिक 'चिण् ङि' से इव (सदृश) अर्थ में 'वतिँ' प्रत्यय हुआ है, अतः 'चिण्' पर रहते, जो यथायोग्य वृद्धि, युँक् का आगम, 'हन्' धातु के 'ह्' को घत्व और मितों को वैकल्पिक दीर्घ होते हैं, वे सभी कार्य यहाँ चिण्वद्भाव होने पर भी होते हैं। इन सभी कार्यों को सोदाहरण प्रस्तुत करते हुए प्रकृत सूत्र से सम्बद्ध अन्य सभी प्रासंगिक विषय–वस्तु को भी उदाहरण सहित विस्तार से प्रस्तुत शोध लेख में प्रस्तुत किया जायेगा।

मुख्य शब्द : चिण्वद्भाव, अंग–कार्य, सार्वधातुकसंज्ञा, आर्धधातुकसंज्ञा, सन्नियोगशिष्ट, प्रवृत्ति, सन्नन्त, आभीयकार्य, विघाती।

प्रस्तावना

"लः कर्मणि च भावे चाऽकर्मकेभ्यः" सूत्र में लकारों के तीन अर्थ बतायें गयें हैं– कर्त्ता, कर्म और भाव। सकर्मक धातुओं से लकार कर्त्ता एवं कर्म अर्थ में तथा अकर्मक धातुओं से लकार कर्त्ता एवं भाव अर्थ में होते हैं। कर्त्ता अर्थ में लकार होने पर कर्तृवाच्य होता है। कर्म तथा भाव अर्थ में लकार होने पर क्रमशः कर्मवाच्य व भावाच्य होता है। प्रकृत सूत्र से कर्मवाच्य व भावाच्य में बनने वाले रूपों के विषय में नियम किया जाता है। प्रकृत सूत्र विकल्प से चिण्वद्भाव तथा चिण्वद्भाव पक्ष में इडागम करता है।

सूत्र

753. (विधि सूत्र) स्य–सिँच्–सीयुँट्–तासिँषु भावकर्मणोरुपदेशेऽज्झन–ग्रह–दृशां वा चिण्वदिट् च– 6/4/62

विभक्ति, वचन–निर्देश

स्य–सिँच्–सीयुँट्–तासिँषु– 7/3, भावकर्मणोः– 7/2, उपदेशे– 7/1, अज्झन–ग्रह–दृशाम्– 6/3, वा– अव्यय पद, चिण्वत्– अव्यय पद, इट्– 1/1, च– अव्यय पद।

सन्धि–विच्छेद

भावकर्मणोरुपदेशे– भावकर्मणोस्[पद] +उपदेशे (**"ससजुषो रुँः"**[2]– स्<रुँ, **"उपदेशेऽजनुनासिक इत्"**[3] एवं **"तस्य लोपः"**[4]– रुँ<र्। उपदेशेऽच्– उपदेशे+अच् (**"एङः पदान्तादति"**[5]– ए+अ<ए)। अज्झन– अच्[पद]+हन (**"झलां जशोऽन्ते"**[6]– च्+ज्, **"झयो होऽन्यतरस्याम्"**[7]– ह्+झ्)। दृशां वा– दृशाम्[पद]+वा (**"मोऽनुस्वारः"**[8]– म्<ं)। चिण्वदिट्– चिण्वत्[पद]+इट् (**"झलां जशोऽन्ते"**– त्+द्)।

समास– स्यश्च सिँच्च सीयुँट् च तासिँश्च इति स्यसिँच्सीयुँट्तासयः (इतरेतरयोगद्वन्द्व समास), तेषु स्यसिँच्सीयुँट्तासिँषु। भावश्च कर्म च इति भावकर्मणी (इतरेतरयोगद्वन्द्व समास), तयोः भावकर्मणोः। अच् च हनश्च ग्रहश्च दृ–श् च अज्झनग्रहदृशः (इतरेतरयोगद्वन्द्व समास), तेषाम् अज्झनग्रहदृशाम्।

विशेष

चिणि इव चिण्वत्। (**"तत्र तस्येव"**– 5/1/115 सूत्र से सप्तम्यन्त प्रातिपदिक 'चिण्+ङि' से इव (सदृश) अर्थ में वतिँ प्रत्यय)

अधिकार– अङ्गस्य– 6/4/1– अङ्गस्य।

नोट

यहाँ 'अंग' का तात्पर्य 'धातु' से है।

वृत्ति

उपदेशे योऽच् तदन्तानां हनादीनां च च्विणीव अङ्गकार्यं वा स्यात् स्यादिषु भावकर्मणोर्गम्यमानयोः, स्यादीनामिडागमश्च। चिण्वद्भावपक्षेऽयमिट्। चिण्वद्भावाद् वृद्धिः– भाविता, भविता। भाविष्यते, भविष्यते। भूयताम्। अभूयत। भूयेत। भाविषीष्ट, भविषीष्ट।

अर्थ

भाव अथवा कर्म अर्थ गम्यमान हो, तो उपदेश अवस्था में जो अच्, तदन्त धातुओं को तथा हन्, ग्रह् एवं दृश् धातुभ्यों को विकल्प से चिण्वत् अङ्ग कार्य होते हैं, स्य, सिँच्, सीयुँट् अथवा तासिँ पर रहते, साथ ही चिण्वत् पक्ष में 'स्य' आदि को 'इट्' आगम भी होता है।

नोट

'अच्' पद, 'अङ्गस्य' का विशेषण होने के कारण **"येन विधिस्तदन्तस्य"**[9] परिभाषा सूत्र से 'अच्' में तदन्तविधि होकर 'अजन्तानाम् अङ्गानाम्' ऐसा पद बन जाता है।

शंका

'भावि (णिजन्त धातु)+तास् त', 'भू+तास् त' आदि अवस्था में प्रकृत सूत्र से 'चिण्वद्भाव' व 'इट्' आगम तथा **"आर्धधातुकस्येड् वलादेः"**[10] सूत्र से 'इट्' आगम, दोनों की युगपत् प्राप्ति होती है, तो ऐसी स्थिति में **"विप्रतिषेधे परं कार्यम्"**[11] परिभाषा सूत्र के बल से परत्व के कारण वलादिलक्षण वाला 'इट्' आगम क्यों नहीं हो जाता है?

समाधान

ऐसा इसलिए नहीं होता है, क्योंकि वलादिलक्षण वाला 'इट्' आगम अनित्य और 'चिण्वद्भाव व इट्' नित्य होता है। जो कार्य विपक्ष के होने पर अथवा न होने पर दोनों ही स्थितियों में प्राप्त होता है, वह नित्य कहलाता है– **'कृताऽकृतप्रसङ्गी यो विधिः स नित्यः'**। यहाँ 'भावि (णिजन्त धातु)+तास् त', 'भू+तास् त' आदि अवस्था में वलादिलक्षण वाला 'इट्' आगम होने पर भी 'चिण्वद्भाव और इडागम' की प्राप्ति रहती ही है, परन्तु 'चिण्वद्भाव और इडागम' कर देने पर वलादि आर्धधातुक पर में न रहने से वलादिलक्षण वाला 'इट्' आगम की प्राप्ति नहीं हो सकती है, अतः 'चिण्वद्भाव और इडागम' कार्य नित्य हुआ और वलादिलक्षण वाला 'इट्' आगम अनित्य। नित्य एवं अनित्य कार्यों की युगपत् प्राप्ति होने पर हमेशा नित्य कार्य ही किया जाता है। इस प्रकार पहले 'चिण्वद्भाव और इडागम' हो जाते हैं और इसके अभाव पक्ष में वलादि आर्धधातुक को 'इट्' आगम होता है। जैसा कि महाभाष्यकार ने भी कहा है– **'इट् चाऽसिद्धस्तेन मे लुप्यते णिर्नित्यश्चायं वल्निमित्तो विघाती'** अर्थात् **अयम्**='चिण्वद्भाव' के साथ होने वाला 'इट् आगम' **नित्यः**=नित्य है, इसलिये इसकी प्रवृत्ति में पर व अनित्य **वल्निमित्तः**=वलादिलक्षण वाला 'इट्' आगम **विघाती**=प्रवृत्ति के योग्य नहीं होता है।

विशेष

1. **"स्य–सिँच्–सीयुँट्–तासिँषु भावकर्मणोरुपदेशेऽज्झन–ग्रह–दृशां वा चिण्वदिट् च"** सूत्र **"आर्धधातुके"**[12] सूत्र के अधिकार में पढ़ा गया है, इसलिए आशीर्लिङ् के आर्धधातुकसंज्ञक 'सीयुँट्' का ही प्रकृत सूत्र में ग्रहण होता है, न कि विधिलिङ् के सार्वधातुकसंज्ञक 'सीयुँट्' का।
2. चिणि इव चिण्वत् अर्थ में **"तत्र तस्येव"** सूत्र से सप्तम्यन्त प्रातिपदिक 'चिण् ङि' से इव (सदृश) अर्थ में 'वर्तिं' प्रत्यय हुआ है, अतः 'चिण्' पर रहते, जो यथायोग्य वृद्धि, युँक् का आगम, 'हन्' धातु के 'ह्' को घत्व और मितों को वैकल्पिक दीर्घ होते हैं, वे सभी कार्य यहाँ चिण्वद्भाव होने पर भी होते हैं।
3. यहाँ ध्यातव्य है कि **'सन्नियोगशिष्टानां सह वा प्रवृत्तिः सह वा निवृत्तिः'** इस परिभाषा के बल से **"स्य–सिँच्–सीयुँट्–तासिँषु भावकर्मणोरुपदेशेऽज्झन–ग्रह–दृशां वा चिण्वदिट् च"** सूत्र से जिस पक्ष में 'चिण्वद्भाव' होता है, उसी पक्ष में 'इट्' आगम भी होता है, परन्तु 'चिण्वद्भाव' अङ्ग को होता है और 'इट्' आगम 'स्य', 'सिँच्', 'सीयुँट्' एवं 'तासिँ' प्रत्ययों को होता है, क्योंकि महाभाष्य में कहा गया है कि– **'यावान् इण् नाम स सर्व आर्धधातुकस्यैव भवति'** अर्थात् सभी प्रकार का 'इट्' आगम आर्धधातुक को ही होता है।
4. 'चिण्वद्भाव' से तात्पर्य है कि 'चिण्' परे रहते, जो–जो अङ्ग सम्बन्धी कार्य किये जाते हैं, वे सभी अङ्ग कार्य 'स्य' आदि प्रत्ययों के परे रहते भी हों। 'चिण्' णित् ('ण्' की इत्संज्ञा वाला) प्रत्यय है, अतः इसके परे रहते, निम्नलिखित चार अङ्गकार्य होते हैं। ये सभी कार्य भाववाच्य एवं कर्मवाच्य में 'स्य' आदि प्रत्ययों के परे रहते भी होते हैं–

क 'चिण्' परे रहते, **"अचो ञ्णिति"**[13] अथवा **"अत उपधायाः"**[14] सूत्र से 'णित्' प्रत्यय निमित्तक वृद्धि होती है, यह कार्य भाववाच्य तथा कर्मवाच्य में 'चिण्वद्भाव' होने पर 'स्य' आदि प्रत्ययों के परे रहते भी किया जाता है। जैसे– भाविष्यते, ग्राहिष्यते आदि।

ख 'चिण्' प्रत्यय के परे रहते, **"आतो युँक् चिण्कृतोः"**[15] सूत्र से आदन्त धातुओं को 'युँक्' आगम होता है, वह कार्य भाववाच्य एवं कर्मवाच्य में 'स्य' आदि प्रत्ययों के परे रहते भी होता है। जैसे– दायिष्यते इत्यादि।

ग **"हो हन्तेर्ञ्णिन्नेषु"**[16] सूत्र से 'चिण्' णित् प्रत्यय परे रहते, 'हन्' धातु के 'ह्' के स्थान पर कुत्व 'घ्' आदेश होता है, यह कार्य भाव और कर्म अर्थ में 'स्य' आदि प्रत्ययों के परे होने पर भी होता है। जैसे– घानिष्यते आदि।

घ **"चिण्णमुलोर्दीर्घोऽन्यतरस्याम्"**[17] सूत्र से 'चिण्परक' अथवा 'णमुल्परक' 'णि' पर रहते, मित्संज्ञक अंग की उपधा को विकल्प से दीर्घ आदेश होता है, वह कार्य भाव एवं कर्म अर्थ में 'स्य' आदि प्रत्ययों के परे होने पर भी होता है। जैसे– शामिष्यते, शमिष्यते इत्यादि।

महाभाष्यकार ने 'चिण्वद्भाव' के उपर्युक्त चारों प्रयोजनों को 'शालिनी' छन्द के माध्यम से बड़े सुन्दर ढ़ंग से प्रतिपादित किया है–

"चिण्वद् वृद्धिर्युक् च हन्तेश्च घत्वं दीर्घश्चोक्तो यो मितां वा चिणीति।

इट् चाऽसिद्धस्तेन मे लुप्यते णिर्नित्यश्चायं वल्निमित्तो विघाती।।" (महाभाष्य, 6/4/62)

अर्थात् 'चिण्' प्रत्यय के परे रहते यथायोग्य जैसे– वृद्धि, युगागम, 'हन्' धातु के 'ह्' को कुत्व 'घ्' एवं मित्संज्ञकों को विकल्प से दीर्घादेश होते हैं, उसी प्रकार से 'चिण्वद्भाव' में भी समझना चाहिए। इस 'चिण्वद्भाव' के साथ विधीयमान 'इट्' आगम कृत (किया गया) आभीय होने से होने वाले दूसरे आभीय कार्य **"णेरनिटि"**[18] सूत्र से 'णिलोप' की दृष्टि में असिद्ध होता है, अतः वलादि आर्धधातुक मिल जाने से **"णेरनिटि"** सूत्र से 'णिच्' के 'इ' का लोप हो जाता है। यह 'इट्' आगम नित्य एवं वलादि आर्धधातुक को होने वाला 'इट्' आगम अनित्य होता है। चिण्वद्भाव के साथ होने वाला 'इट् आगम' नित्य है, इसलिये इसकी प्रवृत्ति में पर व अनित्य वलादिलक्षण वाला 'इट्' आगम प्रवृत्ति के योग्य नहीं होता है।

5. प्रकृत सूत्र में 'उपदेश अवस्था में अजन्त धातु' इस प्रकार न कहकर 'उपदेश अवस्था में जो अच्, तदन्त धातु' ऐसा कहा गया है, क्योंकि ऐसा कहने से णिजन्त धातुओं से पर 'तासिँ' आदि प्रत्यय करने पर 'चिण्वद्भाव और इडागम' हो जाते हैं। यदि 'उपदेश में अजन्त धातु' इस प्रकार कहते, तो 'भावि' आदि णिजन्त धातुओं का कहीं उपदेश न होने से इनका यहाँ ग्रहण नहीं हो सकता था, परन्तु अब 'उपदेश में जो अच्, तदन्त धातु' ऐसा कह देने से 'भावि' आदि णिजन्त धातुओं का निर्बाध रूप से ग्रहण हो जाता है, क्योंकि 'इ' (णिच्) प्रत्यय का **"हेतुमति च"**[19] सूत्र से उपदेश किया गया है, अतः तदन्त धातु से 'भावि' आदि णिजन्त धातु का ग्रहण हो जाता है।

भाविता (चिण्वद्भाव पक्ष में)–

भू सत्तायाम् ('भू' धातु 'सत्ता=होना' अर्थ में प्रयुक्त होती है।)– भ्वादिगण, परस्मैपदी, अकर्मक, सेट्।

भू+लुँट्

"अनद्यतने लुँट्"[20] सूत्र से 'अनद्यतन भविष्य काल की क्रिया' के वाचक अकर्मक 'भू' धातु से पर 'भाव' अर्थ में 'लुँट्' लकार हुआ।

भू+लुँट् (ल्+उँ+ट्)

"हलन्त्यम्" सूत्र से उपदेश अवस्था 'लुँट्' में अन्त्य हल् 'ट्' की तथा **"उपदेशेऽजनुनासिक इत्"** सूत्र से 'लुँ=ल्+उँ' में अनुनासिक अच् 'उँ' की इत्संज्ञा एवं इत्संज्ञक 'ट्' तथा 'उँ' का **"तस्य लोपः"** सूत्र सेलोप हुआ।

भू+ल्

"भावकर्मणोः"[21] सूत्र से भाववाचक 'ल्' (लुँट्) के स्थान पर 'आत्मनेपद' का विधान हुआ।

भू+त

प्रथम पुरुष एकत्व की विवक्षा में **"तिप्तस्झिसिप्थस्थमिप्वस्मस्तातांझथासाथांध्वमिड्वहिमहिङ्"**[22] सूत्र से 'ल्' (लुँट्) के स्थान में आत्मनेपदसंज्ञक 'त' प्रत्यय हुआ।

भू+डा

स्थानी के साथ समान संख्या वाले आदेश होने से **"यथासंख्यमनुदेशः समानाम्"**[23] परिभाषा सूत्र की सहायता से **"लुँटः प्रथमस्य डारौरसः"**[24] सूत्र से 'त' के स्थान पर क्रमशः 'डा' आदेश हुआ।

भू+डा (ड्+आ)

"चुटू"[25] सूत्र से 'डा' प्रत्यय के आदि में स्थित टवर्ग– 'ड्' की इत्संज्ञा एवं इत्संज्ञक 'ड्' का **"तस्य लोपः"** से लोप।

भू+आ

सार्वधातुक संज्ञा

स्थानिवद्भाव के कारण **"तिङ्शित्सार्वधातुकम्"**[26] सूत्र से तिङ्– 'आ' प्रत्यय की सार्वधातुक संज्ञा।

भू+तासिँ आ

"सार्वधातुके यक्"[27] सूत्र से सार्वधातुकसंज्ञक 'आ' प्रत्यय पर रहते, 'भू' धातु से पर 'यक्' प्रत्यय की प्राप्ति हुई, परन्तु उसको बाधकर **"स्यतासी लृँलुँटोः"**[28] सूत्र से 'तासिँ' प्रत्यय हुआ।

भू+तासिँ (स्+इँ) आ

"उपदेशेऽजनुनासिक इत्" सूत्र से उपदेश अवस्था में स्थित 'तासिँ' के सकारोत्तर (स्+इँ) अनुनासिक अच् 'इँ' की इत्संज्ञा एवं इत्संज्ञक 'इँ' का "तस्य लोपः" से लोप।

भू+तास् आ

अंग संज्ञा

"यस्मात्प्रत्ययविधिस्तदादि प्रत्ययेऽङ्गम्"[29] सूत्र से 'भू' धातु से विहित (किये गये) 'तासिँ' (तास्) प्रत्यय पर रहते, व्यपदेशिवद्भाव से 'भू' है, आदि में 'भू' शब्दस्वरूप के तथा प्रकृति सहित वह शब्दस्वरूप भी 'भू' है, अतः 'भू' शब्दस्वरूप की 'अंग' संज्ञा हुई।

भू+इट् तास् आ

चिण्वद्भाव

"स्य–सिँच्–सीयुँट्–तासिँषु भावकर्मणोरुप–देशेऽज्झन–ग्रह–दृशां वा चिण्वदिट् च" सूत्र से भाव अर्थ गम्यमान रहते, उपदेश अवस्था में अजन्त (अच्–'ऊ' अन्त वाली) 'भू' धातु को विकल्प से चिण्वद्भाव हुआ, 'तास्' प्रत्यय पर रहते तथा चिण्वद्भाव पक्ष में 'तास्' प्रत्यय को 'इट्' आगम भी हुआ। टित् (टकार की इत्संज्ञा वाला) 'इट्' आगम **"आद्यन्तौ टकितौ"**[30] परिभाषा सूत्र की सहायता से 'तास्' प्रत्यय का आद्यवयव बनकर उपस्थित हुआ।

भू+इट्/(इ) तास् आ

"हलन्त्यम्"[31] सूत्र से उपदेश अवस्था 'इट्' में अन्त्य हल् 'ट्' की इत्संज्ञा व इत्संज्ञक 'ट्' का "तस्य लोपः" से लोप।

भू+इ तास् आ

चिण्वद्भाव होने के कारण **"यदागमास्तद्गुणीभूतास्तद्ग्रहणेन गृह्यन्ते"** परिभाषा से णित् 'तास्' (तासिँ) को होने वाला 'इट्' (इ) आगम 'तास्' प्रत्यय के गुण से गुणीभूत हो गया अर्थात् 'तास्' प्रत्यय में रहने वाला गुण णित्व से 'इट्' आगम भी गुणीभूत=णित्व गुण वाला हो गया, इसलिए 'णित्' प्रत्यय से 'इ तास्' का ग्रहण होता है।

भौ+इ तास् आ

चिण्वद्भाव होने के कारण **"अचो ञ्णिति"** सूत्र से 'इ तास्' को 'चिण्' की तरह णित् प्रत्यय मानकर

उसके परे रहते, अजन्त अंग 'भू' के भकारोत्तर (भ्+ऊ) 'ऊ' को 'औ' वृद्धि आदेश हुआ।

भ् आव्+इ तास् आ

स्थानी के साथ समान संख्या वाले आदेश होने से **"यथासंख्यमनुदेशः समानाम्"** परिभाषा सूत्र की सहायता से **"एचोऽयवायावः"**[32] सूत्र से 'इ' अच् परे रहते, एच्– 'औ' के स्थान पर क्रमशः 'आव्' आदेश हुआ।

भ् आव्+इ तास्(आस्)आ

टि संज्ञा

"अचोऽन्त्यादि टि"[33] सूत्र से 'तास्' में अचों में अन्त्य अच् तकारोत्तरवर्ती (त्+आ) 'आ' है, वह 'आ' आदि में है, 'आस्' समुदाय के, अतः 'आस्' समुदाय की 'टि' संज्ञा हुई।

भ् आव्+इ तास्(आस्)आ

'डित्त्वसामर्थ्यादभस्यापि टेर्लोपः' अर्थात् डित्त्व के सामर्थ्य=बल से **"टेः"**[34] सूत्र से अभसंज्ञक (भसंज्ञक भिन्न) 'तास्' में टिसंज्ञक भाग 'आस्' का लोप हुआ।

भाविता

वर्णसम्मेलन।

विशेष

चिण्वद्भाव होने पर, चिण्वद्भाव पक्ष में **"स्य–सिँच्–सीयुँट्–तासिँषु भावकर्मणोरुपदेशेऽज्झन –ग्रह–दृ–शां वा चिण्वदिट् च"** सूत्र से 'इट्' आगम भी होता है। चिण्वद्भाव के अभावपक्ष में यदि धातु सेट् है, तो नित्य ही 'इट्' आगम होता है। धातु वेट् है, तो विकल्प से 'इट्' आगम तथा धातु के अनिट् होने पर 'इट्' आगम का निषेध होता है, अतः चिण्वद्भाव के अभाव पक्ष में 'भू' धातु के सेट् होने के कारण 'भू तास् त' व 'भू स्य त' इस अवस्था में क्रमशः वलादि आर्धधातुक 'तास्' और 'स्य' को "आर्धधातुकस्येड् वलादेः" सूत्र से नित्य 'इट्' आगम होता है।

(लघु.) अकर्मकोऽप्युपसर्गवशात् सकर्मकः।

अनुभूयते आनन्दश्चैत्रेण (आनन्दः चैत्रेण) त्वया मया च।

अकर्मक धातु भी उपसर्ग के योग=सामीप्य के कारण सकर्मक हो जाती है। जैसे– 'सत्ता=होना' अर्थ वाली 'भू' धातु मूलतः अकर्मक होती है, किन्तु 'अनु' उपसर्गपूर्वक 'भू' धातु का प्रयोग होने पर सकर्मक हो जाती है, क्योंकि अब इसका अर्थ हो जाता है– 'अनुभव करना' या महसूस करना'। अकर्मक धातु से भाववाच्य में तथा सकर्मक धातु से कर्मवाच्य में लकार होते हैं। यहाँ 'अनु' उपसर्गपूर्वक 'भू' धातु का प्रयोग होने से सकर्मक हो जाने के कारण कर्मवाच्य में 'लँट्' आदि लकार होते हैं। लकार के कर्म अर्थ में आने के कारण 'कर्म' उक्त हो जाता है, जिससे उसमें प्रथमा विभक्ति होती है। कर्म के वचनों के अनुसार तङ् प्रत्ययों में वचन होते हैं। भाववाच्य में जहाँ लकार के केवल प्रथम पुरुष, एकवचन में ही रूप बनते हैं, वहीं कर्मवाच्य में कर्म के अनुसार लकार के सभी पुरुषों के तीनों वचनों में रूप बनते हैं। जैसे– तेन आनन्दोऽनुभूयते, ताभ्याम् आनन्दोऽनुभूयते, त्वया आनन्दोऽनुभूयते इत्यादि प्रयोगों में कर्म 'आनन्द' है, उसका प्रथमा विभक्ति, एकवचन में प्रयोग होने के कारण कर्मवाच्य की क्रिया 'अनुभूयते' में भी प्रथम पुरुष, एकवचन का प्रयोग किया गया है, परन्तु कर्म के द्विवचनान्त या बहुवचनान्त होने पर क्रिया में भी द्विवचन या बहुवचन का प्रयोग होता है। जैसे– मया सुखदुःखे अनुभूयेते (द्विवचनान्त), त्वया शीतवर्षातपादयोऽनुभूयन्ते (बहुवचनान्त) इत्यादि। इसी प्रकार कर्म के 'युष्मद्' या 'अस्मद्' शब्द होने पर क्रिया में मध्यम या उत्तम पुरुष का प्रयोग होता है। जैसे– तेन त्वम् अनुभूयसे, तेन युवाम् अनुभूयेथे, तेन यूयम् अनुभूयध्वे, तेन अहम् अनुभूये, तेन आवाम् अनुभूयावहे, तेन वयम् अनुभूयामहे आदि। यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि कर्मवाच्य में कर्म हमेशा उक्त (कहा गया) होता है, तथा कर्त्ता अनुक्त (न कहा गया), इसलिए **"कर्तृकरणयोस्तृतीया"**[35] सूत्र से अनुक्त कर्त्ता में तृतीया विभक्ति होती है तथा कर्त्ता की संख्या के अनुसार वचन। भाववाच्य एवं कर्मवाच्य में यक्, चिण्वद्भाव+इडागम और आत्मनेपद आदि सभी कार्य समान रूप से होते हैं, परन्तु दोनों में अन्तर केवल इतना है कि भाववाच्य में क्रिया में केवल प्रथम पुरुष, एकवचन के रूप प्रयुक्त होते हैं, वहीं कर्मवाच्य में क्रिया में कर्म के अनुसार पुरुष एवं वचन प्रयोग किये जाते हैं।

नोट

'अनुभूयते' आदि में 'लँट्' लकार 'कर्म' अर्थ में किया गया है, 'कर्त्ता' में नहीं, इसलिए 'कर्म' के पुरुष और वचन का इस पर प्रभाव पड़ता है, न कि 'कर्त्ता' के पुरुष और वचन का। जैसे– तेन सुखम् अनुभूयते, ताभ्यां सुखदुःखे अनुभूयेते, तैः शीतवर्षातपादयोऽनुभूयन्ते, मया त्वम् अनुभूयसे, त्वया अहम् अनुभूये इत्यादि उदाहरणों में अनुभूयते, अनुभूयेते, अनुभूयन्ते, अनुभूयसे, अनुभूये आदि प्रयोगों में कर्म के अनुसार क्रिया में परिवर्तन हो रहा है, न कि 'कर्त्ता' के अनुसार।

कर्मवाच्य में सकर्मक 'अनु' उपसर्गपूर्वक 'भू सत्तायाम्' धातु के 'लँट्' लकार के रूप

पुरुष	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	अनुभूयते	अनुभूयेते	अनुभूयन्ते
मध्यम पुरुष	अनुभूयसे	अनुभूयेथे	अनुभूयध्वे
उत्तम पुरुष	अनुभूये	अनुभूयावहे	अनुभूयामहे

आभीयत्वेनाऽसिद्धत्वाण्णिलोप

भाविता (चिण्वद्भाव पक्ष में)–

'भावि+इट् तास् आ' इस अवस्था में **"स्य–सिँच्–सीयुँट्–तासिँषु भावकर्मणोरुपदेशेऽज्झन–ग्रह–दृशां वा चिण्वदिट् च" (6/4/62)** और **"णेरनिटि" (6/4/51)** इन दोनों सूत्रों से होने वाले कार्य आभीय कार्य हैं तथा **"असिद्धवदत्राभात्"** सूत्र के नियम से समान आश्रय वाले दो आभीय कार्यों में हो चुका आभीय कार्य, नहीं किये हुए दूसरे आभीय कार्य की दृष्टि में असिद्ध होता है, अतः इस नियम से **"स्य–सिँच्–सीयुँट्–तासिँषु भावकर्मणोरुपदेशेऽज्झन–ग्रह–दृशां वा चिण्वदिट् च"** सूत्र से 'तास्' (तासिँ) को निमित्त मानकर चिण्वद्भाव व चिण्वद्भाव पक्ष में इडागम रूप आभीय कार्य, **"णेरनिटि"** सूत्र से उसी 'तास्' (तासिँ) को निमित्त मानकर नहीं किये हुए आभीय कार्य 'णिलोप' की दृष्टि में असिद्ध हो जाते हैं और इस प्रकार **"णेरनिटि"** को 'इ तास्' के स्थान पर केवल 'तास्' दिखाई देता है, इसलिए **"णेरनिटि"** सूत्र से अनिडादि (जिसको 'इट्' का आगम न हुआ हो, ऐसा)

आर्धधातुकसंज्ञक 'तास्' प्रत्यय परे रहते, 'भावि' के वकारोत्तर (व्+इ) 'इ' (णिच्) प्रत्यय का लोप हो जाता है।

असिद्धवदत्राभात्

(6/4/22) से लेकर पाद की समाप्ति तक होने वाले कार्य, आभीय कार्य कहलाते हैं। किसी आश्रय को लेकर हो चुका आभीय कार्य, उसी आश्रय को लेकर होने वाले दूसरे आभीय कार्य की दृष्टि में असिद्ध होता है।

बोभूयते आदि में यङ्लुगन्त धातु के विषय में यह ध्यातव्य है कि केवल कर्तृवाच्य में ही 'यङ्लुगन्त' धातु से परस्मैपद का विधान होता है, भाववाच्य एवं कर्मवाच्य में **"भावकर्मणोः"** सूत्र से आत्मनेपद का ही विधान किया जाता है।

विशेष

यहाँ एक बात विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि जो धातु मूल रूप में अकर्मक होती है, वह यङन्त अथवा यङ्लुगन्त धातु हो जाने पर भी अकर्मक ही रहती है। जैसे– 'भू' धातु मूलतः अकर्मक है, इसलिये यङन्त (बोभूय) एवं यङ्लुगन्त (बोभू) धातु भी अकर्मक ही है। 'कृ' धातु सकर्मक है, अतः यङन्त (चेक्रीय) और यङ्लुगन्त (चर्कृ) भी सकर्मक रहती है। यथा– तेन घटाश्चेक्रीय्यन्ते, तया पटाश्चर्क्रियन्ते।

उद्देश्य

प्रस्तुत शोध लेख का यह उद्देश्य है कि **"स्य–सिँच्–सीयुँट्–तासिँषु भावकर्मणोरुपदेशेऽज्झन–ग्रह–दृशां वा चिण्वदिट् च"** सूत्र से सम्बद्ध विभक्ति, वचन–निर्देश, सूत्रगत सन्धि–विच्छेद, समास, विशेष, अधिकार का ज्ञान तथा सूत्र के अर्थ का तात्त्विक ज्ञान के साथ–साथ सूत्र के भावाच्य तथा कर्मवाच्य से सम्बद्ध रूपों का तत्त्वतः ज्ञान होगा। प्रकृत सूत्र से सम्बद्ध भावाच्य तथा कर्मवाच्य के रूपों को कण्ठस्थ करने आवश्यकता नहीं होगी। उदाहरणों में प्रकृत सूत्र की प्रवृत्ति तथा प्रत्युदाहरणों में अप्रवृत्ति का स्पष्ट रूप से ज्ञान होगा।

निष्कर्ष

प्रस्तुत शोध लेख का निष्कर्ष इस रूप में कहा जा सकता है कि सूत्र व सूत्रार्थ का तथ्यात्मक ज्ञान, उदाहरणों में सूत्रों की प्रवृत्ति तथा प्रत्युदाहरणों में अप्रवृत्ति का स्पष्ट रूप से ज्ञान होने के पश्चात् जनसामान्य तथा विशेष रूप से संस्कृत विषय में भी व्याकरणेतर छात्र–छात्राओं का संस्कृत व्याकरण शास्त्र के प्रति रुचि उत्पन्न होगी। साथ ही 'व्याकरण शास्त्र कठिन शास्त्र है' इस प्रकार का भ्रमात्मक संशय दूर होगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *पा. अ. सूत्र– 5/1/116*
2. *पा. अ. सूत्र– 8/2/66*
3. *पा. अ. सूत्र– 1/3/2*
4. *पा. अ. सूत्र– 1/3/9*
5. *पा. अ. सूत्र– 6/1/109*
6. *पा. अ. सूत्र– 8/2/39*
7. *पा. अ. सूत्र– 8/4/62*
8. *पा. अ. सूत्र– 8/3/23*
9. *पा. अ. सूत्र– 1/1/72*
10. *पा. अ. सूत्र– 7/2/35*
11. *पा. अ. सूत्र– 1/4/2*
12. *पा. अ. सूत्र– 6/4/46*
13. *पा. अ. सूत्र–7/2/115*
14. *पा. अ. सूत्र– 7/2/116*
15. *पा. अ. सूत्र– 7/3/33*
16. *पा. अ. सूत्र– 7/3/54*
17. *पा. अ. सूत्र– 6/4/93*
18. *पा. अ. सूत्र– 6/4/51*
19. *पा. अ. सूत्र– 3/1/26*
20. *पा. अ. सूत्र– 3/3/15*
21. *पा. अ. सूत्र– 1/3/13*
22. *पा. अ. सूत्र– 3/4/38*
23. *पा. अ. सूत्र– 1/3/10*
24. *पा. अ. सूत्र– 2/4/85*
25. *पा. अ. सूत्र– 1/3/7*
26. *पा. अ. सूत्र– 3/4/113*
27. *पा. अ. सूत्र– 3/1/67*
28. *पा. अ. सूत्र– 3/1/33*
29. *पा. अ. सूत्र– 1/4/13*
30. *पा. अ. सूत्र– 1/1/46*
31. *पा. अ. सूत्र– 1/3/3*
32. *पा. अ. सूत्र– 6/1/78*
33. *पा. अ. सूत्र– 1/1/64*
34. *पा. अ. सूत्र– 6/4/155*
35. *पा. अ. सूत्र– 2/3/18*

✦ *पाणिनीय–अष्टाध्यायी–सूत्र*